विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष ११ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२५ • फाल्गुन पूर्णिमा [शक] • दि. ९-३-१९८२ • अंक ९

प्रवचन-प्रवाह

तीसरा दिन

आज हमारी साधनाके तीन दिन पूरे हुए। कल दोपहरको विपश्यना दी जायेगी। तब तकके लिए स्मृतिका अभ्यास करना है और समाधिको पुष्ट करना है। मनको और अधिक सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण बनाना है।

ध्यान के स्थानको जरा छोटा करना होगा। अब नासिकाके नीचे ऊपरवाले होठ तकका जो स्थान है उस पर जो संवेदना मालूम हो, उसे महत्व देंगे। उसे देखेंगे।

संवेदना शब्दको लेकर कभी-कभी साधकोंके मनमें एक भ्रम, एक भ्रांति पैदा होती है। क्योंकि ध्यानके नाम पर हमने बहुतसे बौद्धिक लेप लगा लिए हैं तो किसी अलौकिक अनुभूतिकी अपेक्षा होती है। लेकिन यह विधि अपने आपमें निराली है। यहाँ किसी अलौकिकताके पीछे नहीं दौड़ना है। जो स्वाभाविक है, नैसर्गिक है, वास्तविक है, बस केवल उसे ही देखना है।

कल हमने धर्म के आठ अंगोंमें से छः अंगोंकी चर्चा की थी। शीलकी चर्चा हुई जिसमें शरीर और वाणीके दुष्कर्मोंसे बचनेकी बात थी। समाधिकी चर्चा हुई जिसमें मनको वशमें करनेकी बात आयी। पर हमेशा मनके साथ जोर-जबरदस्ती करके, उसे दमन करते हुए कोई व्यक्ति दुःखोंसे छुटकारा नहीं पा सकता। हर दमन हमारे मनमें एक नई गांठ, एक नया तनाव पैदा करता है। दमन द्वारा एक बार वाणी और शरीरके दुष्कर्मोंसे तो बच जाते हैं क्योंकि मन अपने वशमें आ गया। पर यह सही समाधान नहीं है। प्रारंभ तो अवश्य उससे होता है, पर जरा सा ही। हमें आगे बढ़ना है और उसीको प्रज्ञा कहते हैं। प्रज्ञाके क्षेत्रमें गहराइयोंसे गुजर जायेंगे तो मनको दबानेकी जरूरत नहीं होगी।

आज प्रज्ञाके क्षेत्रको बौद्धिक स्तर पर समझेंगे। धर्मके शेष दो अंग प्रज्ञाके अन्तर्गत आते हैं- सम्मा संकप्पा याने सम्यक् संकल्प और सम्मा दिट्ठि याने सम्यक् दृष्टि।

धम्म वाणी

सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवा पन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेसु, सील पञ्ञाणतो जयं॥

- थेर गाथा-७० (पुण्णो थेरो)

यहाँ, धर्मके क्षेत्रमें, शील ही प्रमुख है, अग्र है; प्रज्ञा ही प्रधान है, उत्तम है। शील और प्रज्ञासे ही मनुष्यों और देवताओंमें सही विजय होती है।

संकल्पका अर्थ है-चिंतन, मनन। हमारे मनमें जो विचार चलते हैं, संकल्प-विकल्प चलते हैं वे सम्यक् होने चाहिए, सही होने चाहिए। जब साधनाका अभ्यास प्रारंभ किया तब भी विचार चलते थे और अब भी चलते हैं। हर साधकने अनुभव किया होगा कि जब कार्य शुरू किया तब विचार बहुत अधिक राग-रंजित, द्वेष-दूषित और मोह-विमूढ़ित थे। सांसके प्रति साक्षीभाव लाते-लाते, स्मृतिका अभ्यास करते-करते अनुभव हुआ होगा कि दूषित विचारोंसे थोड़ा-थोड़ा छुटकारा होने लगा है। दूषित विचार कम होने लगे हैं।

प्रज्ञाके क्षेत्रका दूसरा अंग है सम्यक् दृष्टि, सम्यक् दर्शन। दर्शन शब्द आज बड़ा भ्रामक हो गया है। पच्चीस सौ वर्ष पहले भी दर्शन शब्दका दुरुपयोग होने लगा था। ध्यानके क्षेत्रमें, अध्यात्मके क्षेत्रमें जिस सही अर्थका प्रयोग होना चाहिए वह तो लुप्त हो गया और दर्शनका अर्थ होने लगा अमुक-अमुक मान्यताएँ, परम्पराएँ। हर संप्रदायकी अपनी भिन्न-भिन्न दार्शनिक मान्यताएँ होती हैं। हर संप्रदाय अपनी इन दार्शनिक मान्यताओंको महत्व देता है और मानता है कि यही सम्यक्-दर्शन है। बस यहीं विवाद खड़े हो गए। दर्शनका सही और वास्तविक अर्थ लुप्त हो गया। दर्शनका सही अर्थ है जो बात, जो वस्तु जैसी है उसे वैसे ही उसके गुण-धर्म-स्वभावमें देखें। यही सम्यक् दर्शन है।

प्रज्ञाके तीन सोपान हैं --- श्रुतमयी प्रज्ञा, चिंतनमयी प्रज्ञा और भावनामयी प्रज्ञा।

श्रुतमयी प्रज्ञाका अर्थ है वह ज्ञान जो हमने सुन लिया अथवा शास्त्रोंमें पढ़ लिया। बड़ा उपयोगी है यह ज्ञान। इसका अपना लाभ है। इससे प्रेरणा मिलती है, मार्ग-दर्शन मिलता है। लेकिन किसी बातको केवल श्रद्धापूर्वक मान लेना मात्र काफी नहीं है। इस ज्ञानसे, मार्ग-दर्शनसे प्रेरणा लेकर आगे कदम बढ़े तभी लाभ होता है। अन्यथा केवल सुना या पढ़ा हुआ ज्ञान अन्ध-श्रद्धाका रूप ले लेता है।

चिंतनमयी प्रज्ञाका अपना महत्व है। चिंतन-मनन करना मनुष्यका स्वभाव है, उसका अपना प्राकृतिक धर्म है। वह हर बात अपनी बुद्धिकी कसौटी पर कसकर देखेगा। मनन करेगा तो ही स्वीकार करेगा। यह प्रज्ञाका दूसरा क्षेत्र है। जो कुछ सुना है, पढ़ा है उस पर चिंतन-मनन करके यह निश्चय करना कि कौनसी बात युक्तिसंगत है, न्याय-संगत है, तर्क-संगत है, धर्म-संगत है? तब ही उसे स्वीकार करना। लेकिन इससे भी अगला कदम है और वह नहीं उठा तो यह स्थिति भी खतरनाक हो जायेगी। सिर पर एक दम्भ सवार हो जायेगा कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया-- -- सारे शास्त्र पढ़ लिए, उन शास्त्रों को तर्क-वितर्कसे समझ लिए। मैं बड़ा प्रज्ञावान हो गया। यह भी बड़ी भ्रांतिमय स्थिति है। जब तक अपनी अनुभूतिके स्तर पर अपने ज्ञानकी वृद्धि नहीं होगी, सही मानेमें लाभ नहीं होगा।

अतः श्रुतमयी और चिंतनमयी प्रज्ञासे लाभ लेकर अगला कदम उठाना, भावनामयी प्रज्ञाके क्षेत्रमें प्रवेश करना है। अपनी अनुभूतियोंके बल पर जो प्रज्ञा बढ़ रही है वह कल्याण-कारिणी प्रज्ञा है। उसीसे मनोबल सधता है, पुरानी गांठे खुलती हैं, नई गांठे नहीं बंधती। हम जो साधना कर रहे हैं, उसका यही लक्ष्य है कि प्रत्येक साधककी भावनामयी प्रज्ञा जाग्रत हो।

हर परंपराके महापुरुषोंने जो बात कही, अपने अनुभवोंसे कही। पर वह हमारे कामकी तभी होगी जबकि वह सारा अनुभव हमारे जीवनमें उतरे। जो अनुभूति होती है उसे शब्दोंमें पूरी तरह नहीं उतारा जा सकता। कुछ तो अनुभूतियाँ ऐसी हैं जो इंद्रियातीत हैं। अन्तिम सत्यकी अनुभूति हैं, परम सत्यकी अनुभूति हैं। इन अनुभूतियोंको शब्दोंमें उतारना नितांत असंभव है। क्योंकि शब्दोंकी अपनी सीमा होती है, भाषाकी अपनी सीमा होती है। इसलिए सत्यकी खोजमें निकले साधकके लिए यह आवश्यक है कि सत्यको अपनी अनुभूतिके स्तर पर जाने। यही भावनामयी प्रज्ञा है। इस प्रकार सत्यकी खोज आरंभ करते है तो अन्तर्मुखी होकर जिस सच्चाईका पहले दर्शन करते हैं वह हमेशा स्थूल-ठोस ही होती है। स्थूल सत्यका दर्शन होता है, घनीभूत सत्यका दर्शन होता है। घनीभूत सत्यको देखते-देखते उसके टुकड़े होने लगते हैं तो फिर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और फिर सूक्ष्मतम सत्यके दर्शन होने लगते हैं और अन्ततः अन्तिम सत्य, परम सत्य तक जाते हैं। अपनी अनुभूतिमें जो उतर रहा है वही अपनी प्रज्ञा है। यह प्रज्ञा कैसे बढ़े, कैसे भावित हो, कैसे इसका बहुलीकरण हो? जो सच्चाई जैसे प्रकट हुई उसे वैसे ही देखेंगे, वैसे ही स्वीकारेंगे। इस पर किसी मान्यताका, दर्शनका, अथवा, राग का, द्वेष का, मोह का, भ्रांतिका रंग-रोगन नहीं चढ़ायेंगे।

सबसे पहली स्थूल इकाई इस शरीरकी है। इससे काम शुरू करते हैं और इसकी सूक्ष्मताओंमें उतरते हैं। धीरे-धीरे चित्तकी सूक्ष्मताओंमें उतरते हैं। उसके गुण, धर्म, स्वभावको देखते हैं। इसके बाद जो इंद्रियातीत धर्म है, सच्चाई है, लोकातीत धर्म है, सच्चाई है उसका साक्षात्कार अपने आप हो जाता है।

शरीरकी और संसारकी अनित्यता और क्षण-भंगुरताके बारेमें खूब सुना और पढ़ा लेकिन अनुभूतियोंके स्तर पर यह बात नहीं जानी। इसलिए बड़ी भ्रांति होती है। उस व्यक्तिने जिसे सम्यक् सम्बोधि प्राप्त हुई, बाहरकी दुनियाको खूब देखा। बाहरकी सच्चाइयोंको बहुत देखा। फिर अन्तर्मुखी होकर अन्तरकी सच्चाईको देखने लगा। इस शरीरके बारेमें क्या सच्चाई है? हड्डी है, मांस है, लहू है, त्वचा है, इत्यादि-इत्यादि। फिर इन्हें टुकडे करके देखा तो पाया कि ये सबके सब नन्हे-नन्हें परमाणु-कणोंसे बने हैं और ये परमाणु-कण भी उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं। अनुभूतिसे मालूम हुआ कि उत्पन्न-नष्ट होनेवाले ये कण "परमाणु" से भी छोटे हैं। उस समयकी समृद्ध भाषामें भी ऐसे छोटे कणको व्यक्त करनेके लिए कोई शब्द नहीं था। तो एक नया शब्द घड़ लिया "अष्टकलाप"। अष्टकलाप उस इकाईको कहा, जहाँ आठ चीजें जुड़ गयीं। उनके और टुकड़े नहीं हो सकते। यह है भौतिक जगतकी नन्हींसे नन्हीं इकाई।

क्या आठ बातें जुड़ गयीं? चार भौतिक तत्व और उनके अपने-अपने गुण, धर्म, स्वभाव। पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व -- -- अपने-अपने गुण-धर्मोंके साथ। और फिर देखा कि यह जो इतनी नन्हीं सी इकाई है यह भी ठोस नहीं है। तरंग ही तरंग है। नश्वर है, भंगुर है, उदय-व्यय ही उदय-व्यय है। और देखा कि इतनी तीव्र गतिसे इन तरंगोंका उदय-व्यय हो रहा है कि पलक झपकने भरमें ये अष्टकलाप अनेक शत सहस्र कोटि बार उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाते हैं।

अनुभूतियोंके स्तर पर जब यह बात स्पष्ट होती है कि यह शरीर कितना अनित्य है, कितना भंगुर है! प्रतिक्षण उदय होता है, व्यय होता है तो आसक्तियाँ अपने आप टूटने लगती हैं। जितनी-जितनी अनुभूतिवाली यह प्रज्ञा पुष्ट होती है, सम्यक् होती है; उतनी-उतनी आसक्ति टूटती ही है। प्रज्ञाका यह पहला स्वरूप, अनित्यबोध का स्वरूप, जब जागने लगता है, प्रमुख होने लगता है तो राग दूर होते हैं द्वेष दूर होते हैं, मोह दूर होते हैं याने दुःख दूर होते हैं, व्याकुलता दूर होती है, कठिनाइयाँ दूर होती हैं, तनाव दूर होते हैं।

ज्यों-ज्यों अनित्य-बोध पुष्ट होने लगता है त्यों-त्यों प्रज्ञाका दूसरा अंग अनात्म-बोध स्पष्ट होने लगता है। यह अनात्म-बोध क्या है? इसे भी ठीकसे समझें!

दार्शनिकोंके अनात्मवाद और आत्मवादके विवादमें हमें नहीं पड़ना है। अनात्मभाव अर्थात् अहम्भाव और ममभावका अभाव। "मैं" नहीं है, "मेरा" नहीं है। इस "मैं-मैं" ने, "मेरा-मेरा" ने कितनी आसक्ति पैदा कर दी है, यह खूब समझमें आने लगेगा। व्यवहार जगतमें "मैं-मेरा", "तू-तेरा" कहना पडता है। लेकिन वास्तविक कठिनाई आसक्तिकी है जिसके कारण दुःख होता है। वस्तुतः इस शरीर-स्कंधके प्रति गहरा चिपकाव हो गया है, गहरी आसक्ति हो गयी है। ऐसे ही चित्त-स्कंधके प्रति गहरा चिपकाव, गहरी आसक्ति हो गयी है। अनुभूतिके स्तर पर देखने लगेंगे तो पता लगेगा कि जिनके प्रति आसक्ति पैदा कर रहे हैं ये तो तरंगें ही तरंगें हैं।

"सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो"

सारे लोक प्रज्वलित ही प्रज्वलित हैं, सारे लोक प्रकम्पित ही प्रकम्पित हैं। यह तो उदय-व्ययका प्रकम्पन है, इसमें "मैं" और "मेरा" जैसा कुछ है ही नहीं। जब यह शरीर ही मेरा नहीं है तो इससे एक कदम भी आगे, एक इंच भी आगे जो वस्तु है, व्यक्ति है, स्थिति है वह "मेरी" कैसे होगी? अनात्मका अर्थ है जहाँ अहम् समाप्त हो जाय, मम् समाप्त हो जाय। तभी राग मिटता है, द्वेष मिटता है।

अनित्य और अनात्मबोधके साथ-साथ प्रज्ञाके तीसरे अंग -- "दुःख" का वास्तविक बोध होने लगता है। सही मानेमें दुःख क्या है? यह बात समझमें आने लगती है। जो अनित्य है प्रतिक्षण बदलता है, प्रतिक्षण भंग होता है; जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, जो "मैं" नहीं, "मेरा" नहीं उसके प्रति जितनी-जितनी आसक्ति है, उतना-उतना दुःख ही है। यह बात अनुभूतियोंसे समझमें आयेगी, प्रवचनों से नहीं। सही मानेमें दुःखके दर्शन होने लगेंगे स्थूल-स्थूल दुःखके दर्शन तो होंगे ही, आगे चलकर सूक्ष्म दुःखके भी दर्शन होने लगेंगे, जिसे दुनियादारीकी भाषामें "सुख" कहते हैं। अभी तो शरीर पर होनेवाली स्थूल-स्थूल पीड़ाओंका जितना दुख है उसे साक्षीभावसे देखना सीखेंगे। जिसे सुखद संवेदना कहते हैं, अनित्य स्वभाववाली होनेके कारण उसके नष्ट होने पर जो दुःख होता है उसे भी जानेंगे और साक्षीभावसे देखना सीखेंगे।

अनित्य, अनात्म और दुःखकी ये तीनों प्रज्ञाएँ भीतरसे अपने आप जागने लगेंगी तो बाह्य जगतमें भी प्रज्ञाका ही शासन चलेगा। जो बात अशुभ है, अशुभ ही लगेगी। जो असुन्दर है, असुन्दर ही लगेगी।

जैसे-जैसे अन्तर्मुखी होकर गहराइयोंमें प्रवेश करेंगे तो मालूम होगा कि संगठनकी, संश्लेषणकी घनीभूत हो जानेकी अपनी माया है। बड़ा भ्रम पैदा करती है यह माया। ज्यों-ज्यों प्रज्ञा पुष्ट होने लगेगी, सारी बात जैसी है वैसी ही दिखने लगेगी। जैसा बाहर, वैसा भीतर। इस प्रकारके ज्ञानसे कभी घृणा नहीं जागेगी। धर्म कभी किसीसे घृणा करना नहीं सिखाता। मैत्री जागेगी, करुणा जागेगी, जीवनमें समता आयेगी।

इस भावनामयी प्रज्ञाको जमानेके लिए कल काम शुरू करेंगे। इन तीन दिनों तक शील पालन करते हुए समाधिके क्षेत्रमें जो पुरुषार्थ किया है उसका लाभ कल मिलेगा। कितनी गहराइयोंमें जा सकेंगे, यह बात हर व्यक्तिकी अपनी मेहनत पर, अपने काम पर, अपनी तपस्या पर निर्भर करती है। निरन्तर अभ्यासमें लगे रहें! सफलता मिलने ही वाली है!

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

(पू. गुरुजी के प्रवचन का श्री रामसिंह द्वारा संक्षिप्तिकरण)

विपश्यना पत्रके स्वामित्व आदिका विवरण

(फॉर्म ४, नियम बी)

पत्रिका का नाम	–	"विपश्यना"
भाषा	–	हिन्दी
प्रकाशनकी अवधि	–	प्रतिमास पूर्णिमा (शक)
प्रकाशनका स्थान	–	२०, शहीद भगतसिंह मार्ग, फोर्ट, बम्बई -४०००२३.
पत्रिकाके मालिकका नाम	–	"सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट," २०. शहीद भगतसिंह मार्ग, बम्बई - ४०००२३.
प्रकाशक, मुद्रक व संपादकका नाम	–	राम प्रताप यादव
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	ग्रीन हाउस, २ तल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई - २३.
मुद्रण-स्थान	–	"अक्षर चित्र" सातपुर नासिक ४२२००७

मैं राम प्रताप यादव, एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासानुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

राम प्रताप यादव

दि. २८-२-८१. प्रकाशक, मुद्रक, संपादक

नागपुरमें सामूहिक साधना

नागपुरके सभी पुराने विपश्यी साधकोंके लिए प्रसन्नताकी बात है कि वहाँ निम्नलिखित स्थान एवं समय पर सामूहिक साधना हुआ करेगी। सभी स्थानीय साधक इस उपलब्ध सुविधा का लाभ उठाते हुए एक-दूसरेके धर्मबलको पुष्ट करनेमें सहायक हों!

स्थान : "रचना अपार्टमेंट" ब्लाक नं. ८, मश्रुवाला मार्ग, शिवाजी नगर,

समय : प्रति रविवार, प्रातः ८-३० बजेसे ९-३० बजे तक।

इगतपुरी में स्वयं तथा लघु-शिविर

स्वयं-शि. क्र. ९८ २३-३-८२ ,, ३-४-८२ ,,

,, ९९ ३-४-८२ ,, १३-४-८२ ,,

लघु शि. क्र. १३-४-८२ से १८-४-८२ तक

पू. गुरुदेव के सान्निध्यमें, केवल पुराने साधकोंके लिए

संपर्क : व्यवस्थापक, वि. वि. वि; धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३ (नासिक) फोन नं. इगतपुरी-७६.

भावी कार्यक्रम

शिविर क्रमांक २०९
दि. १८-३-८२ से २९-३-८२ तक (हिन्दी)
* हैदराबाद – विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र, 'धम्मखेत्त', कुसुम नगर, पो. वनस्थलीपुरम, १२.६ कि. मि., नागार्जुनसागर रोड, हैदराबाद-५०० ६६१. फोन : ५९२५९
* संपर्क : १) श्रीमती ऊषाबेन पी. मेहता, ६१, श्रीनगर कॉलोनी, हैदराबाद-५०० ८७३. फोन : ३०२९१. अथवा
२) श्री पूरनमल अग्रवाल, द्वारा–होटल राजधानी, सिद्दिअम्बर बाजार, हैदराबाद-५०० ०१२. फोन : ५७५७१.

शिविर क्रमांक २१०
दि. ३१-३-८२ से ११-४-८२ तक (अंग्रेजी)
□ कैंडी (श्रीलंका)
□ संपर्क : Shri Brindley Ratwatte, C/o. Independent Newspapers Limited, P. O. Box 1257, Colombo 12, Shri Lanka.
Phone - 23882, Telegram - DAVASA, Colombo.

शिविर क्रमांक २११
दि. २५-४-८२ से ६-५-८२ तक (हिंदी)
* इगतपुरी – विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३ (नासिक) फोन नं. इगतपुरी-७६
* संपर्क : व्यवस्थापक, " " " " "

शिविर क्रमांक २१२
दि. ९-५-८२ से २०-५-८२ तक (हिंदी)
* काठमांडू (नेपाल)
* संपर्क : श्री मणिहर्ष ज्योति, ज्योति भवन, कांति पथ, पो. बाक्स नं. १३३, काठमांडू (नेपाल)
फोन–आफिस : ११४९०/१४९०२/१४३२७, घर – ११२९०, तार–हिमालयायरन, काठमांडू.

ग्राम : प्रेमकेबल फोन नं. : ४०३५७/४४५४७

मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं. लि.,
१४/१५, एफ, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११० ००१
की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

काळो धोळो गेहुंओ, मिनख मिनख ही होय।
मैलै मन दुखियो रवै, निरमल सुखियो होय॥
चित सूं चित रो समन कर, चित सूं चित्त सुधार।
चित सुअच्छ कर चित्त सूं, खोल मुक्ति रा द्वार॥
वाणी तो बस मँह भली, बस मँह भलो सरीर।
पण जो मन बस मँह करै, वो ही साच्चो वीर॥
सील धरम पालण भलो, निरमल भली समाधि॥
प्रग्या तो जागी भली, दूर करै भव व्याधि॥
प्रग्या सील समाधि ही, मंगल रो भंडार।
सै सुख साधणहार है, सै दुख टारणहार॥
प्रग्या सील समाधि ही, सुद्ध धरम रो सार।
काया वाणी चित्त रा, सुधरै सै ब्योहार॥

दोहे धर्म के

जब जब अन्तर्जगतमें, जागे चित्त विकार।
मैं भी व्याकुल हो उठूं, विकल करूं संसार॥
मैं भी व्याकुल ना बनूं, जगत विकल ना होय।
जीवन जीने की कला, सत्य धर्म है सोय॥
जो चाहे बंधन खुलें, मुक्ति दुखों से होय।
वश में करले चित्त को, चित के वश मत होय॥
पहली मंजिल शील है, दूजी मंजिल ध्यान।
तीजी प्रज्ञा पुष्टि की, अंतिम पद निर्वाण॥
शीलवान के ध्यान से, प्रज्ञा जाग्रत होय।
अंतर की गांठें खुलें, मानस निर्मल होय॥
बिना शील धारण किए, शुद्ध समाधि न होय।
बिन समाधि प्रज्ञा नहीं, मुक्ति कहाँ से होय॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई-२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/–, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/– ● वार्षिक शुल्क रु. ५/–, आजीवन शुल्क रु. ५१/–

"विपश्यना"

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To